

हमारे समाज में बच्चों तक पाठ्यपुस्तकों से इतर साहित्य की पहुंच नहीं है। स्कूल और समुदायों में पुस्तकालय की जरूरत भी नहीं समझी जाती। यह अनुभव बताता है कि बच्चे पढ़ना चाहते हैं और यदि पुस्तकालय का संचालन बेहतर तरीके से किया जाए तो बच्चों की रचनात्मक ऊर्जा को दिशा दी जा सकती है।

## जादुई कालीन का सफर

कमल किशोर

### परिचय

करीब 20 वर्षों से शिक्षा के क्षेत्र में कार्यरत स्वयंसेवी संगठनों के साथ कार्य किया। आजकल स्वतंत्र रूप से कार्य कर रहे हैं।

इस सफर के अनुभवों को व्यक्त करने के पहले कुछ घटनाओं का जिक्र करना जरूरी लग रहा है, क्योंकि यह घटनाएं पढ़ने के संदर्भ में हमारे देश की दयनीय स्थिति की ओर संकेत करती हैं। हमारे समाज में पढ़ना सीखने को इतना मुश्किल बना दिया गया है कि स्कूलों में कुछ बच्चे तो सात-आठ वर्षों की पढ़ाई के बाद भी 'पढ़ना' नहीं सीख पाते हैं, पढ़ने की आदत का विकास तो बहुत दूर की बात है। जबकि हमारे अनुभव बताते हैं कि पढ़ने के उचित और सहज वातावरण में बच्चे स्वयं के प्रयासों से पढ़ना वैसे ही सीख जाते हैं जैसे उन्होंने सुनना व बोलना सीखा था।\* मजदूर वर्ग के निरक्षर माता-पिताओं के बच्चों ने सिर्फ पढ़ना ही नहीं सीखा बल्कि उनके व्यवहार में सकारात्मक बदलाव भी दिखने लगे थे।

पहली घटना कुछ यूँ है कि उड़ीसा के एक व्यक्ति अपनी बिटिया से मिलने जयपुर आए हुए थे। पहले दिन ही बिटिया तो ऑफिस चली गई। इन्हें लगा कि मैं पूरे दिन क्या करूँ? घर से निकले और टहलते-टहलते शहर के मुख्य पुस्तकालय में आ गए। पुस्तकालय संचालक तो इन्हें देख गदगद हो गया। दोपहर के समय पुस्तकालय संचालक ने अपनी चाय के साथ इनके लिए भी चाय मंगवाई। सामने चाय का प्याला देखकर इनका सिर आश्चर्य से पुस्तकालय संचालक की ओर घूमा। मन ही मन इनके प्रश्न को समझकर संचालक ने कहा, "सर! आजकल यहां कोई नहीं आता। आपको देखकर बहुत अच्छा लग रहा है।"

दूसरी घटना तो ऐसी है जैसे कोई अंधेरे का प्रतिनिधि बार-बार जीत जाए और चिढ़ाने के लिए हर बार आपको ठेंगा दिखा दे।

\* यह लेख दिगन्तर, जयपुर द्वारा संचालित किए गए 'खो समुदाय अध्ययन कक्ष' के अनुभवों पर आधारित है।

पिछले कुछ वर्षों से मुझे लगभग प्रत्येक माह में अध्यापकों के साथ प्रशिक्षण करने के मौके मिलते रहे हैं। आजकल आप क्या पढ़ रहे हैं? या पिछले एक-दो वर्षों में पढ़ी किसी पुस्तक का नाम बताइए? जब-जब भी प्रशिक्षण में इस प्रकार के सवाल किए गए, लगभग नब्बे प्रतिशत संभागी एक भी किताब का नाम नहीं बता पाते। शेष दस प्रतिशत संभागी जिन पुस्तकों का नाम बताते, उन्हें सुनकर भी निराशा ही हाथ लगती थी। रामायण, महाभारत या सामान्य ज्ञान की किसी पुस्तक का नाम बता देते - बस। जब पूछा जाता कि आपके पसंदीदा लेखक कौन हैं? इस सवाल के जवाब में भी अधिकतर अध्यापक साथी तो चुप ही रहते थे। केवल एक-दो संभागी 'मुंशी प्रेमचंद' आदि एक-दो लेखकों का नाम बता पाते। स्थिति यह है कि पिछले चार-पांच वर्षों में सैकड़ों अध्यापकों में से एक-दो ही अध्यापक ऐसे मिले जो नियमित रूप से साहित्य पढ़ते हैं।

एक दलित बस्ती के राजकीय विद्यालय में पुस्तकालय शुरू करना था। इस संदर्भ में स्कूल के अध्यापकों से सलाह-मशविरा किया गया। उनका जवाब था, “साहब! क्यों पैसा बर्बाद कर रहे हैं। यह बच्चे तो कोर्स की किताबें ही नहीं पढ़ते, आपकी किताबें कैसे पढ़ेंगे।”

ऐसी घटनाएं निरन्तर घटती रहती हैं। स्पष्ट रूप से यह दिख रहा है कि हमारे देश में लोग पढ़ नहीं रहे हैं। देश के हिन्दी भाषी क्षेत्रों में तो स्थिति और ज्यादा निराशाजनक है क्योंकि सामान्य व्यक्ति ही नहीं, जो शिक्षा के क्षेत्र से जुड़े हैं वे भी नहीं पढ़ते और लगभग सभी ने यह मान लिया है कि बच्चे (नई पीढ़ी) भी नहीं पढ़ेंगे। इन स्थितियों में हम बहुत कुछ खो रहे होंगे, ऐसा भी अधिकतर वयस्कों को नहीं लगता है। जबकि किसी ने कहा है, “अच्छी किताब जादुई कालीन की तरह है, जो आहिस्ता से हमें उस दुनिया की सैर कराती है, जहां दूसरी किसी चीज के जरिए हम प्रवेश नहीं कर सकते।”

समाज के युवाओं ने पढ़ना छोड़ दिया है या यूं कहें कि पढ़ना शुरू ही नहीं किया है। पर क्या हम यह चाहते हैं कि हमारे बच्चे भी नहीं पढ़ें? सभी बच्चे जन्म से ही कल्पनाशील, रचनाशील और जिज्ञासु होते हैं, तो फिर वे पढ़ते क्यों नहीं हैं? क्या करने से पढ़ने लगेंगे? किन प्रयासों से बच्चों को अध्ययनशील बनाया जा सकता है? क्या करें कि बच्चे पढ़ने को सीखने के एक और मजबूत माध्यम के रूप में अपना सकें?

इन्हीं सब सवालों के उत्तर खोजने के लिए पांच-छः वर्ष पूर्व दिगन्तर ने एक समुदाय अध्ययन कक्ष शुरू किया था। आगे के लेखन में इसी अध्ययन कक्ष के अनुभवों को बांटने की कोशिश की गई है। क्योंकि यह अनुभव हमारी कई पूर्व-मान्यताओं को तोड़ते हैं और बच्चों में अध्ययनशीलता की कैसी ललक होती है, उसे दर्शाते हैं।

## कुछ मिले-जुले से, कुछ बंटे-बंटे से, मेहनती परिवारों के बीच

जगतपुरा से आगरा रोड़ को जोड़ती हुई एक सड़क अरावली पर्वत शृंखलाओं के साथ-साथ चलती जाती है। इसी सड़क पर जगतपुरा रेल्वे फाटक से लगभग पांच किलोमीटर की दूरी पर खो नागोरियान क्षेत्र है। यहां अन्दाजन एक हजार परिवार, एक या हद से हद दो कमरों के मकानों में रहते हैं। लगभग आधे मकान सड़क के बाईं ओर पहाड़ी की ढलान पर सकड़ी-सकड़ी गलियां बनाते खड़े हैं। शेष मकान सड़क के दाईं ओर के मैदानी भाग में बने हैं।

खो में चार-पांच मोहल्ले हैं जिन्हें अलग-अलग दिखाने के लिए दीवारें नहीं हैं, पर सामाजिक भेदभाव की खाईयां बहुत गहरे तक बनी हुई हैं। खटीकों का मोहल्ला, कुम्हारों का मोहल्ला, रैगरों की बस्ती में लगभग चालीस प्रतिशत परिवार व शेष साठ प्रतिशत घर नागोरियान परिवारों के हैं जो बीच-बीच में व कहीं-कहीं झुंडों में नजर आते हैं।

इस क्षेत्र के अधिकतर महिला-पुरुष भवन निर्माण के कामों में मजदूरी करने जाते हैं। पूरे दिन की कड़ी मेहनत के बाद भी परिवारों का भरण-पोषण नहीं हो पाता, इसलिए किशोर-किशोरियों को भी काम करना होता है। कुछ किशोर नगीने घिसाई का तो कुछ किशोरियां सिलाई-कढ़ाई का काम करती नजर आती हैं। इन परिवारों में ऐसे माता-पिता बहुत कम हैं, जिन्होंने आठवीं तक की पढ़ाई की है। लगभग सत्तर प्रतिशत बच्चे एक सरकारी, तीन प्राइवेट व दिगन्तर के एक स्कूल में पढ़ रहे थे। कुछ वर्ष पहले लड़कियों को स्कूल नहीं भेजा जाता था। दिगन्तर के प्रयासों से यह संभव हुआ कि बालिकाएं भी प्राथमिक शिक्षा पूरी करने लगीं और कुछ तो दसवीं व आगे की शिक्षा से भी जुड़ीं।

इन परिवारों के बीच 'समुदाय अध्ययन कक्ष' शुरू करने की जरूरत महसूस की जाने लगी। इस काम के लिए कोई परियोजना या किसी प्रकार की अनुदान राशि स्वीकृत नहीं थी। तय किया गया कि जगह का इंतजाम समुदाय की ओर से हो जाएगा और पुस्तक दिगन्तर के पुस्तकालय से ले सकते हैं। यह भी तय हुआ कि दिगन्तर के वैकल्पिक शिक्षा कार्यक्रम में कार्यरत 'समुदाय समन्वयक' अपने काम से दो घंटों का समय अध्ययन कक्ष के संचालन को देंगे।

मैं उस समय 'समुदाय समन्वयक' की भूमिका में काम कर रहा था। मैं इस काम के लिए चुने जाने से बहुत उत्साहित था। बच्चों के साथ खेलना, बातें करना और कहानियां सुनाना आदि मेरे लिए दुनिया में सबसे अच्छे काम रहे हैं। मैंने कमर कस ली और इस काम की तैयारियों में जुट गया।

## पूर्वाग्रहों को तोड़ती मरियम की उपस्थिति

'समुदाय अध्ययन कक्ष' जो एक पुस्तकालय है, इसे क्यों खोल रहे हैं? इसे हम कहां पर खोलें? क्या आप इस पुस्तकालय में आएंगी? क्या आप अपने बच्चों को किताबें पढ़ने के लिए भेजेंगे? इन सवालों के इर्द-गिर्द बातचीत के मकसद से घर-घर संपर्क किया गया। कुछ घरों के दरवाजे खुले हुए, तो कुछ के बन्द मिले। कुछ ने आदर-सम्मान से बिठाया तो कुछ ने बेरुखी से अपना परिचय दिया। अधिकतर बड़ों ने तो बहुत कम प्रतिक्रियाएं दीं, सवाल भी नहीं के बराबर पूछे, पर बच्चों ने कई सवाल पूछे। कहां आना है? कब से आना है? किताबें घर ला सकते हैं क्या? आदि-आदि। रैगरो व कुम्हारों के बच्चों ने कहा कि अगर पुस्तकालय नागोरियान के वास में खोलोगे तो हम वहां नहीं आएंगे क्योंकि मुसलमानों के बच्चे हमको मारते हैं।

हम दिगन्तर के साथी सभी छोटी-छोटी समस्याओं पर चर्चा करते थे। मैंने बच्चों द्वारा एक-दूसरे के मोहल्ले में नहीं आने की बात को भी दिगन्तर साथियों से साझा किया। विचार-विमर्श के बाद निर्णय लिया गया कि सप्ताह में दो-दो दिन, अलग-अलग स्थानों पर अध्ययन कक्ष चलाया जाए।

बच्चों की मदद से तीनों मोहल्लों में अध्ययन कक्ष के लिए काम-चलाऊ जगहों का इन्तजाम हो गया था। तय हुआ कि शुरू करने से पहले बच्चों व किशोरों की बैठक कर ली जाए ताकि समय आदि तय हो जाए। पहली मीटिंग नागोरियान के वास में रखी गई। मीटिंग की सूचना ज्यादातर लड़कों को ही दी गई क्योंकि मुझे लगता था कि मुस्लिम महिलाएं इतना पर्दा करती हैं, वे अपनी लड़कियों को बैठक में नहीं भेजेंगी। लेकिन फिर भी कुछ लड़कियों के घर भी बैठक में आने का न्यौता दिया गया।

बैठक का समय शाम पांच बजे का तय था। ठीक समय पर कोई नहीं आया, पर धीरे-धीरे साढ़े पांच बजे तक 25-30 लड़के आ गए। बैठक शुरू करने लगे तो देखा कि सामने से मरियम भी आ रही है। तेरह-चौदह वर्ष की कक्षा 8 में पढ़ रही भोली-सी लड़की। मरियम बैठक में आई तो लगा जैसे चांद धरती पर उतर आया है। मरियम को देखकर आस-पास की अन्य लड़कियां भी बैठक में आ गईं।

मरियम की मां ने ही आज दोपहर अपने घर का दरवाजा खोलकर मुझसे कहा था कि आप तो बहुत अच्छा काम कर रहे हैं। यह तो तालीम का काम है और तालीम का काम करना तो अल्लाह की इबादत करने जैसा है। इस दिन रात को चुपचाप चादर में मुंह ढककर मैं बहुत रोया, कुछ खुशी के मारे और कुछ यह सोचकर कि मैं लोगों के बारे में कितना कम जानता हूं। सुबह उठा तो बहुत हल्का-हल्का महसूस कर रहा था। ऐसे लगा जैसे मई-जून की धूल में सने पत्ते पहली जोरदार बारिश के बाद धुले-धुले और ज्यादा हरे, कोमल व नए हो गए हैं।

अध्ययन कक्ष के लिए पुस्तकें चुनने स्फूर्ति के साथ पुस्तकालय में गया। वैसे तो हमारे देश में बाल साहित्य की पुस्तकें बहुत कम संख्या में उपलब्ध हैं, पर दिगन्तर के पुस्तकालय से दो-तीन सौ अच्छी पुस्तकें चुनना मुश्किल नहीं था। क्योंकि पिछले आठ-दस वर्षों के प्रयासों से बच्चों के लिए अच्छा और भिन्न-भिन्न प्रकार का साहित्य यहां उपलब्ध था।

किताबें चुनी, उन्हें बैग में भरा, दो दरियां लीं और खो की तरफ बढ़ चला। रास्ते में कई सवाल उठ रहे थे और सोचने को मजबूर कर रहे थे। क्या बच्चे इन किताबों को पढ़ेंगे? कैसे पढ़ेंगे? कई बच्चों को तो पढ़ना ही नहीं आता है। जिन्हें थोड़ा-बहुत आता है वे भी समझते हुए नहीं पढ़ते हैं। और फिर यह बच्चे तो ढूंढाड़ी भाषा ही बोलते-सुनते हैं जबकि सब किताबें तो हिन्दी भाषा की हैं।

मैं बच्चों को कहानियां सुनाऊंगा। कहानियां सुनने में तो बच्चों को मजा भी आता है। वे जरूर रोजाना आने लगेंगे। और फिर मैंने ऐसी किताबें ज्यादा ली हैं जिसमें बड़े-बड़े, आकर्षक चित्र हैं। बच्चे पढ़ेंगे नहीं तो चित्र तो देखेंगे ही, ऐसे कई विचार दिमाग में चल रहे थे।

साथ बैठे, पढ़ा, बातें कीं तो लगा - अरे ये तो हमारे जैसे ही हैं।

मैं जैसे ही अध्ययन कक्ष के नियत स्थान पर पहुंचता, पांच-सात बच्चे मेरे पास आ जाते। हम मिलकर झाड़ू लगाते और दरियां बिछा देते। पुस्तकें रखने के लिए अलमारी या कोई रैक आदि तो थी नहीं, इस वजह से पुस्तकों को दीवार के पास-पास या दरियों के किनारे-किनारे लंबी पंक्तियों में जमा दिया जाता था। बाद में जाकर लगा कि आलमारियां होतीं तब भी किताबों को दरियों पर लंबी पंक्तियों में जमाना ही उचित था, क्योंकि आलमारियां तो कितनी हो सकती थी? दो, चार, दस...। पर बच्चे तो 50-60 की संख्या में एक साथ आते थे। वे बहुत समय तक किताबें चुनने के लिए इन्तजार नहीं कर सकते थे। इस काम में यही उचित था कि बच्चे जैसे ही आएँ, तुरन्त एक साथ सभी बच्चे अपने-अपने लिए पुस्तकें चुन सकें।

शुरुआत के दिनों में बीस-पच्चीस बच्चे आए। अगले दो सप्ताह में ही अध्ययन कक्ष में आने वाले बच्चों की संख्या 50-60 तक पहुंच गई। बच्चे पहले किताबों को पढ़ते या देखते। लगभग एक घंटे के समय के बाद मैं कहता कि जिन्हें कहानी सुननी है वे मेरे पास आ जाएँ। लगभग सभी बच्चे मेरे सामने आकर बैठ जाते। एक-दो माह का समय बीत जाने के बाद ऐसा होने लगा था कि कुछ बच्चे किताबें पढ़ते रहते और वे कहानी सुनने नहीं भी आते थे।

दो-तीन सप्ताह का समय बीत जाने के बाद कुछ बच्चे कहने लगे, “कमल जी, आप तो रोजाना ही आया करो।” मैं कहता कि दूसरे मोहल्लों में भी तो पुस्तकालय खोलना है। मैं रोजाना कैसे आ सकता हूँ? इस प्रकार की मांग तीनों मोहल्लों से उठने लगी थी। मेरे आग्रह पर कुछ बच्चे दूसरे मोहल्लों में चलने वाले पुस्तकालयों में भी आने लगे थे। मैंने भी बच्चों को यह विश्वास दिलाया कि अध्ययन कक्ष में किसी बच्चे को कोई भी बच्चा डराएगा, धमकाएगा नहीं।

अगले एक-दो सप्ताह तक कुछ बच्चे दूसरे मोहल्लों के अध्ययन कक्ष में आने लगे। वे साथ बैठकर कहानियां सुनते, किताबें पढ़ते, शंकाएं दूर हुईं और आपस में दोस्तियां बढ़ने लगी। अंत में हुआ यह कि एक माह का समय बीत जाने के बाद बच्चों की सहमति से एक ही जगह पर अध्ययन कक्ष चलने लगा।

इस स्थिति से पुस्तकालय में विभिन्न प्रकार के बदलाव आने लगे। अब बच्चे पुस्तकें घर पर भी ले जाने की मांग करने लगे। तय किया गया कि घर के लिए पुस्तकें उन्हीं बच्चों को मिलेंगी जो अध्ययन कक्ष के सदस्य होंगे। सदस्यता फॉर्म भरकर कोई भी व्यक्ति सदस्य बन सकता था। एक माह के समय में लगभग सौ बच्चों ने सदस्यता ग्रहण कर ली थी। अब बच्चे पुस्तकालय में कुछ देर बैठकर पढ़ते भी थे व पुस्तकें घर भी ले जाने लगे थे।

धीरे-धीरे पुस्तकालय का इतना प्रचार हो गया कि आस-पास की ढाणियों/मोहल्लों से भी कुछ बच्चे अध्ययन कक्ष में आने लगे थे। किशोर ही नहीं लगभग सभी मोहल्लों की किशोरियां भी अध्ययन कक्ष सदस्य बनने लगीं। सदस्यों की संख्या चौथे महीने तक चार सौ के लगभग पहुंच गई। दस-बारह महिलाएं व तीन-चार वयस्क भी अध्ययन कक्ष के सदस्य बन गए।

### दोस्तों के साथ गाई कविताएं, दीवारों पर

अध्ययन कक्ष में 40-50 बच्चे 5 से 7 वर्ष तक की उम्र के भी आते थे, जिन्होंने अभी पढ़ना-लिखना सीखना शुरू ही किया था। ऐसे किशोर-किशोरियां भी आते थे, जिन्होंने पढ़ना सीख लिया था, पर वे सामान्य गति से भी नहीं पढ़ पाते थे। मुझे यह देखकर बहुत आश्चर्य होता था कि 8वीं, 10वीं में पढ़ने वाले बच्चे भी कक्षा 1, 2 के स्तर की पुस्तकें ले जाते थे। इन स्थितियों से बहुत चिंता होती थी। लगता था कि कुछ दिनों के बाद यह बच्चे अध्ययन कक्ष में आना छोड़ देंगे, क्योंकि पढ़ने के लिए, पढ़ने के कौशलों का बढ़ना जरूरी है।

मैं इन चिंताओं को मित्रों से दिगन्तर में आने वाले मेहमानों आदि सभी से साझा करता। बातचीत में कई नए सुझाव मिलते। एक बार एकलव्य, भोपाल से अंजली जी से भी लम्बी बातचीत हुई। उन्होंने अपने अनुभवों को याद करके कई महत्वपूर्ण सुझाव दिए। रोहित जी सुझावों के साथ-साथ कई सवाल पूछकर नई दृष्टि से चिंतन-मनन करने को प्रेरित करते थे। मैं खुश होकर कहता कि अध्ययन कक्ष में चार सौ बच्चे सदस्य बन गए हैं। रोहित जी कहते कि यह भी तो देखो कि वे किस प्रकार की किताबें पढ़ रहे हैं? किस बच्चे ने इन चार महिनों में कितनी किताबें पढ़ीं हैं? सहयोगियों, मित्रों आदि से मिले सुझावों का नतीजा यह रहा कि अध्ययन कक्ष में कई नए कामों की शुरुआत हुई। इन शुरुआतों से मिले उत्साहजनक परिणामों ने हमें ऊर्जा से भर दिया।

छः-सात वर्ष के बच्चे घर के आस-पास की गलियों में खेलने के दौरान छोटी-छोटी कविताएं बोलते-गाते रहते थे। मैं इन कविताओं को लिख लेता और अध्ययन कक्ष में आकर बड़े चार्ट पर मोटे-मोटे अक्षरों में कविता को लिख देता और दीवार पर चिपका देता। शाम को जब बच्चे आते तो मैं कविता की पंक्तियों के प्रत्येक शब्द पर अंगुली रखते हुए पढ़कर सुनाता। बच्चे खुश होकर कहते, “अरे! यह कविता तो मुझे भी आती है।” अब दीवारों पर बच्चों का अपना लोक काव्य भी था- उनकी अपनी भाषा में, अपने अर्थों, अपनी अर्थ छटाओं के साथ लिखित स्वरूप में।

मैं प्रतिदिन कोई लोक कथा सुनाने के बाद हावभावों के साथ एक-दो बाल गीत भी बच्चों को गवाता था। छोटे-बड़े सभी उम्र के बच्चे आनन्द के साथ इन गीतों को गाते थे। बाद में आते-जाते कुछ बच्चे इन गीतों को गुनगुनाते नजर आ जाते थे। मैं इन गीतों के भी पोस्टर बनाकर दीवार पर लगा देता।

कुछ चुटकुले, पहलियां आदि भी दीवार पोस्टरों का हिस्सा बनने लगे थे। किसी नई पहली को दीवार पोस्टर पर लिख दिया जाता और कहते कि उत्तर खोजो। उत्तर नहीं खोज पाए तो अगले सप्ताह के पहले दिन उत्तर बाताया जाएगा। अधिकतर ऐसा होता कि बच्चे एक-दो दिनों में ही उत्तर खोज लेते।

एक और नई शुरुआत इन दिनों हुई, जिसने बच्चों के लिए प्रकाश के नए द्वार खोल दिए। मैं देखता कि जो बच्चे पढ़ नहीं पाते थे या बहुत धीमे-धीमे पढ़ते थे, वे बच्चे ऐसे बच्चों के पास बैठ जाते जो ठीक से पढ़ रहे होते थे। साथ बैठने वाले बच्चे पढ़ लेने वाले इस बच्चे से जोर-जोर से बोलकर पढ़ने का आग्रह करते। अध्ययन कक्ष में हर दिन इस तरह से पढ़ रहे बच्चों की चार-पांच टोलियां नजर आने लगीं। लोक कथा सुनाने के साथ-साथ अब मैं भी हर दिन चित्र दिखाते हुए कोई किताब पढ़कर सुनाने लगा। किताब पढ़कर सुनाने के बाद एक साथ कई बच्चे बोल पड़ते, “ये किताब मुझे दे दो, मैं घर लेकर जाऊंगी”

हमारी दीवारों के रंग प्रत्येक सप्ताह के बाद बदल जाते क्योंकि हर नए सप्ताह के पहले दिन नए-नए पोस्टर दीवारों पर लगा दिए जाते। अब बच्चों के लिए दरी पर रखी किताबों के साथ-साथ बहुत कुछ दीवारों पर भी होता था, अर्थ खोजने-पढ़ने के लिए।

### **हमारे बच्चे जल्दी पढ़ना सीख रहे हैं**

कुम्हारों के मोहल्ले के एक मकान में एक निजी स्कूल चलता था। भवन में आगे की तरफ एक बड़ा बरामदा, फिर खुला चौक और पीछे की ओर एक और बरामदा व दो कमरे बने हुए थे। यह स्कूल इस मकान में प्रातः 7:00 से दोपहर 12:30 बजे तक चलता था। बच्चों की छुट्टी के बाद यह जगह खाली पड़ी रहती थी। इसी जगह पर शाम को समुदाय अध्ययन कक्ष भी चलता था।

अध्ययन कक्ष को चलते लगभग सात महिने हो गए थे। एक दिन इस निजी स्कूल के संचालक रास्ते में मिले और बोले कि आपका पुस्तकालय चलने से हमारे बच्चे जल्दी पढ़ना सीख रहे हैं। मैंने पूछा कि यह कैसे हो गया? वे बोले कि खाना खाने की छुट्टी के समय में भी हमारे बच्चे आपके इन पोस्टरों को पढ़ते रहते हैं।

इस उपलब्धि के अनुभव दिगन्तर स्कूल के अध्यापक साथियों से भी साझा किए। एक शिक्षक जो सत्र के आरंभ में प्रवेश लेने वाले नए बच्चों के साथ शिक्षण कार्य करते हैं। उनका कहना था कि जो बच्चे अध्ययन कक्ष में नियमित जा रहे हैं वे छः-सात महिनों में ही पढ़ना सीख गए हैं जबकि दूसरे बच्चों को पढ़ना सीखने में एक-डेढ़ साल का समय लग जाता है।

### **अध्ययन कक्ष - ठंडी छांव की तरह**

कुछ किशोर पुराने शहर में घाट गेट के आस-पास नगीने घिसाई का काम करने जाते थे। काम से शाम को छः-सात बजे तक घर वापस आते थे। अध्ययन कक्ष का समय शुरुआत में शाम 5:00 से 7:00 बजे व जैसे-जैसे सर्दियों के दिन आने लगे तो समय को बदलकर शाम 4:30 से 6:30 का कर दिया गया। दिन में काम करने वाले कुछ किशोरों ने आकर कहा कि हम भी पुस्तकें पढ़ना चाहते हैं। हम शाम को घर वापस आते हैं उस समय तक अध्ययन कक्ष बंद हो जाता है।

अब क्या करें? ऐसा भी नहीं कर सकते कि समय को बदल कर 5:30 से 7:30 या छः से आठ कर दिया जाए, क्योंकि कुछ किशोरियों का कहना था कि वे शाम 5:00 बजे के बाद नहीं आ सकतीं, पांच बजे बाद इन्हें खाना बनाना होता है। ऐसी स्थिति में हमारे पास कोई चारा नहीं था, सिवाय समय बढ़ाने के। अब अध्ययन कक्ष का समय शाम 4:30 बजे से रात 8 बजे तक कर दिया गया। अब कक्ष के खुलने का समय साढ़े तीन घण्टों का हो गया था।

लगभग सौ बच्चे नियमित रूप से पुस्तकालय में आने लगे थे। इनमें से किशोरियां तो शाम 5:00 बजे तक पुस्तकें लेकर घर चली जाती थीं। कुछ ऐसी भी थीं जो शाम 6 बजे तक रुकने लगी थीं। 6 से 9 वर्ष की उम्र के अधिकतर बच्चे भी 6 बजे तक घर चले जाते थे। लगभग 40 किशोर व कुछ किशोरियों का एक समूह ऐसा बन गया था जो तीन-साढ़े तीन घंटे अध्ययन कक्ष में रहने लगा था।

ऐसी स्थितियों में पढ़ने, कहानियां सुनने व गीत-कविताएं गाने के अलावा कुछ नए रचनात्मक काम भी शुरू होने लगे थे जैसे कि, चित्र बनाना, कहानियों पर चर्चा करना आदि। चित्र बनाना व कहानी सुनकर चर्चा करना आदि कामों को हम शाम 7 बजे के बाद शुरू करते क्योंकि शाम 7 बजे से 8 बजे के समय में बच्चों का आना-जाना बहुत कम हो जाता था।

पूरे दिन नगीनों की घिसाई का काम करने वाले बच्चे भी कहानी पर बातचीत करने व चित्र बनाने के काम में ऐसे खो जाते थे कि लगता ही नहीं था कि पूरे दिन के काम के बाद थककर आए हैं। बल्कि मई-जून की गर्मी में लंबा रास्ता तय करने के बाद घने पेड़ की छाया और ठण्डा जल, जैसे सारी थकान दूर कर देता है, वैसे ही इन किशोरों को चित्र बनाते देखकर लगता था।

### मटके घड़ने के साथ, कहानी भी घड़ते जाना

सप्ताह के पहले दिन, सप्ताह भर के लिए एक खाली चार्ट दीवार पर चिपका दिया जाता। बच्चों से कहते कि इस चार्ट पर आप कुछ भी लिख सकते हैं। किसी ने सुनी-सुनाई कविता की पंक्तियां लिखीं तो किसी ने चुटकुला। बीच-बीच में चित्र भी बनाए गए। कुछ बच्चों ने ऐसी बातें भी लिखीं जो नहीं लिखी जानी चाहिए थी। अन्य पठन सामग्री के साथ बच्चे इन बातों को भी पढ़ते और मुझसे शिकायत के लहजे में कहते, “देखिए! उसने चार्ट पर गन्दी बात लिख दी है।”

सप्ताह के किसी एक दिन इस चार्ट के सामने सभी को बिठकार चर्चा की जाती थी। इस चार्ट पर ऐसी कौन-कौनसी बातें हैं, जिन्हें पढ़ना हमें अच्छा नहीं लगेगा? जो कविता हमने किसी किताब में पढ़ी है, उसको यहां इस चार्ट पर लिखें या नई कविता बनाकर लिखनी चाहिए? क्या हम चित्रों को थोड़ा और बेहतर बना सकते हैं? कैसे बनाएंगे? क्या हम नई कहानी भी बना सकते हैं? क्या हम हमारे स्कूल व आस-पड़ोस में घटने वाली घटनाओं में से कोई रोचक घटना चुनकर, समाचार के रूप में यहां लिख सकते हैं? इस प्रकार के विभिन्न सवालियों पर संवाद किया जाता था।

दो-तीन सप्ताह तक इस प्रकार के काम के बाद दीवार अखबार बनाने के लिए तीन-चार टोलियां बनाई गईं। बड़े सुन्दर व पठनीय अखबार तैयार हुए थे। इन अखबारों को दीवारों पर चिपकाया ही नहीं गया बल्कि समूह के अलग-अलग सदस्यों ने समय-समय पर पढ़कर भी सुनाया।

आगे के दिनों में दीवार अखबार की सीमाओं को तोड़ते हुए 16 पृष्ठों की एक बाल पत्रिका हर माह तैयार होने लगी। पत्रिका में कुछ सामग्री स्थापित लेखकों की तो कुछ अध्ययन कक्ष के बच्चों की होती थी। पत्रिका को तैयार करने में किशोरों की भागीदारी महत्वपूर्ण थी। पत्रिका का नाम ‘पंख’ रखा गया। नाम रखने के पीछे भावना यह थी कि अधिकतर बच्चों की कल्पनाओं को पंख लग जाए।

इस दौरान अधिकतर बच्चे चित्र बनाने लगे थे। कुछ बच्चे कहानी, कविताएं भी लिखने लगे थे। इन रचनाओं से पत्रिका ही तैयार नहीं होती थी, कविता पोस्टरों में भी बच्चों की कहानी-कविताएं व चित्र चिपकाए जाने लगे थे।

एक लड़का पूरण जो कक्षा 7 में पढ़ता था। वह लगभग 6.30 बजे के आस-पास अध्ययन कक्ष में आता।

पूरण लगभग हर दिन अपने साथ स्वयं के द्वारा लिखी कोई कहानी या कविता लिखा पन्ना लेकर आता। मैं सोचता था कि पूरण यह रचनाएं कब तैयार करता है? क्योंकि मैं देखता था कि प्रातः 7 बजे से 12.30 बजे तक तो वह स्कूल में पढ़ता है। स्कूल से आते ही खाना खाकर पिता के साथ मिट्टी के मटके आदि बनाने के काम में लग जाता है। एक दिन मैंने पूरण से पूछा कि तुम ये रचनाएं कब तैयार करते हो? पूरण का जवाब था, “वो क्या है कमल जी कि मैं मटकों को घड़ने के साथ-साथ कहानी भी सोचता रहता हूँ। शाम को खाना खाने से पहले झट से इसको लिख लेता हूँ।”

### **कमल जी, अस्वी गंदी किताब मत ल्या-या कर!**

अब अध्ययन कक्ष में कुछ युवक भी आने लगे थे। अन्य बाल पत्रिकाओं के साथ युवाओं के लिए आउटलुक व इण्डिया टुडे भी हर पखवाड़े आने लगी थीं। इन पत्रिकाओं के अन्तिम पृष्ठों पर किसी फिल्म की समीक्षा के साथ एक-दो अश्लील दृश्यों की फोटो भी छपी होती थी। मैंने देखा कि जैसे ही पत्रिका का नया अंक आता कोई एक-दो किशोर पत्रिका पढ़ने के बाद या तो पत्रिका को छिपा देते थे या अन्तिम पृष्ठों को फाड़ ले जाते थे। मैं इनसे पूछता कि तुम ऐसा क्यों करते हो? तो जवाब मिलता, “कमल जी, यहां हमारी बहनें भी आती हैं वे इन चित्रों को देखकर बिगड़ जाएंगी।”

एक किताब व्यक्तिगत स्वच्छता से संबंधित थी। इस किताब के पहले पृष्ठ के चित्र में एक व्यक्ति ‘कमोड’ के ऊपर बैठकर शौच कर रहा है। इस किताब को देखकर एक किशोरी मेरे पास आई और बोली कि आप ऐसी गन्दी किताब मत लाया करो। कुछ घटनाओं पर बच्चों के साथ बातें कीं, पर कुछ घटनाओं को छोड़ भी दिया गया, लगा कि अभी इन मुद्दों पर बात करना उचित नहीं है।

### **दादी पोते को नहीं, पोता दादी को कहानी सुनाता है**

एक लड़की जमा कराने के लिए एक किताब मेरे पास लाई। मैंने देखा कि एक कोने से किताब के सारे पन्ने फटे हुए हैं। मैंने पूछा तो बोली, “कमल जी म्हांकी बकरी खागी”। मुझे लगा कि ऐसी घटनाएं दोबारा न हों इसके लिए बच्चों से बात करनी चाहिए। मैंने बच्चों से एक सवाल पूछा कि आप लोग किताब को घर में किस जगह पर रखते हो? इस सवाल पर बातचीत के दौरान एक नई बात पता चली।

लगभग 8 वर्ष की उम्र के विनोद ने बताया कि वह तो घर ले जाते ही किताब को गद्दे के नीचे छुपा देता है। कारण पूछने पर उसने बताया कि घर पर इन किताबों को पढ़ता देखकर पिताजी डांटते हैं। मैंने कहा कि फिर तुम यहीं बैठकर किताबें पढ़ा करो, घर मत ले जाया करो। इस बात को सुनकर विनोद बोला, “सुबह पिताजी दुकान चले जाते हैं। उनके जाने के बाद मैं अपनी दादी को किताब से कहानी पढ़कर सुनाता हूँ। कहानियां सुनना उनको अच्छा लगता है। वे खुद तो पढ़ नहीं सकती, अंधी हैं।”

### **यह काम तो मैं भी कर सकती हूँ**

हर दिन लगभग सौ बच्चों की किताबें जमा करने व नई किताब जारी करने में लगभग दो-ढाई घंटों का समय खर्च होने लगा था। छोटे बच्चों को कहानियां सुनाने व उनके साथ गीत-कविताएं गाने के लिए समय कम पड़ने लगा। मैंने नियमित आने वाले व देर रात तक रुकने वाले बच्चों से इस संदर्भ में बात की। इन किशोर-किशोरियों ने तुरन्त इस स्थिति का विकल्प सुझा दिया। वे बोले कि किताबें जमा व जारी करने का काम तो हम भी कर सकते हैं। अब बारी-बारी से किशोर-किशोरियां किताबें देने-लेने का काम करने लगे। मेरा काम काफी हल्का हो गया था। एक और काम में इन बच्चों से मदद मिलने लगी। इन दिनों हमने कुछ ‘स्टोरी फोल्डर’ तैयार कर लिए थे। स्टोरी फोल्डर से कहानियां सुनाना, इन किशोरों को भी बड़ा मजेदार



काम लगता था। अब इन किशोर-किशोरियों में से कोई भी बच्चों की जब मांग होती, तब तुरन्त कहानी सुना देता।

## भागीदारी-जिम्मेदारी के साथ

गणतंत्र दिवस के बाद मैं अध्ययन कक्ष की ओर जा रहा था। रास्ते में निजी स्कूल के संचालक मिल गए। मैंने पूछा, “गणतंत्र दिवस का कार्यक्रम कैसा रहा? वे बोले कि इस बार का कार्यक्रम बहुत अच्छे से चला। मैंने पूछा, “इसके कारण क्या रहे?” उन्होंने बताया, “पहले जब भी इस प्रकार का कार्यक्रम करते थे उसमें यहां के बदमाश लड़के बहुत शोर करते थे। कार्यक्रम को ठीक से चलने भी नहीं देते थे। इस बार पता नहीं इन सभी लड़कों को क्या हुआ। चुपचाप बैठकर कार्यक्रम देखते रहे।”

यह अध्ययन कक्ष लगभग दो वर्षों तक चला। जिन दिनों अध्ययन कक्ष की शुरुआत हो रही थी उन्हीं दिनों अध्ययन कक्ष की शुरुआत के छः माह बाद समुदाय अध्ययन कक्ष व पांच राजकीय विद्यालयों में पुस्तकालय के लिए एक संस्था (रूम टू रीड) से वित्तीय मदद मिली। किसी मुद्दे पर असहमति के कारण यह रिश्ता टूटा और वित्तीय सहयोग बंद हो गया। अन्य परियोजनाओं में काम के दबावों के कारण समुदाय समन्वयकों के लिए समुदाय अध्ययन कक्ष के संचालन हेतु समय निकालना मुश्किल हो गया था। इन कारणों से अध्ययन कक्ष सप्ताह में एक-दो बार खुलने लगा व बाद में धीरे-धीरे करके बन्द हो गया।

## भाषा : व्यक्तित्व की केन्द्रीय ऊर्जा

प्रसिद्ध फिल्म समीक्षक, जयप्रकाश चौकसे ने अपने एक लेख में लिखा है, “दरअसल भाषा को महज अभिव्यक्ति का माध्यम मानना गलत है। वह व्यक्तित्व की केन्द्रीय ऊर्जा है। भाषा नए विचारों को भी जन्म देती है। भाषा मुखौटा नहीं होती। वह मुखौटों को उतारती भी है। इसलिए मातृभाषा का विकास आवश्यक है, क्योंकि व्यक्ति मातृभाषा में ही सपने देखता है। दुनिया के तमाम फिल्मकारों ने अपनी मातृभाषा में ही फिल्मों की रचना की है।” लगभग ऐसे ही विचार शिक्षाविदों ने भी व्यक्त किए हैं। जैसे कि, भाषा को सिर्फ संप्रेषण का माध्यम मानना गलत है और बच्चों की मातृभाषा में प्राथमिक शिक्षा होनी चाहिए आदि-आदि।

इन विचारों व अध्ययन कक्ष के अनुभवों पर गहराई से विचार करने के बाद लगता है कि बच्चों के विकास की मुख्य बाधा केवल पढ़ना नहीं सीख पाना न होकर, भाषा का पर्याप्त विकास नहीं होना भी होता है। स्कूल भाषा विकास के नाम पर सिर्फ पढ़ना-लिखना सिखाने पर जोर देते हैं। यहां ध्यान देने वाली बात यह भी है कि अध्यापक बच्चों को तो पढ़ना सिखाने की कोशिशें करते हैं पर स्वयं नहीं पढ़ते। परिवारों में भी भाषा का इस्तेमाल निर्देश या आदेश देने-लेने तक ही सीमित होता है। कहानियां सुनना-सुनाना भाषा विकास का एक मजबूत माध्यम है। ये काम शहरों में ही नहीं, गांवों के परिवारों में भी बन्द हो गए हैं।

ऐसी स्थितियों में हम सभी को अपनी-अपनी मातृभाषा में एक महान सपना यह देखना चाहिए कि हर गांव व शहर के प्रत्येक मोहल्ले में बड़ों और खासकर बच्चों के लिए, ज्यादा समृद्ध अध्ययन कक्ष हों।

## एक व्यक्ति = हजार व्यक्ति

अध्ययन कक्ष का सबसे ज्यादा मजबूत और प्रभावी पक्ष यह है कि यहां बच्चे स्वतंत्र हैं। वे ही तय करते हैं कि आज अध्ययन कक्ष में जाना है या नहीं जाना है? अध्ययन कक्ष में कितने समय रुकना है? आज कौनसी किताब पढ़नी है? इस प्रकार के सभी सवालों पर निर्णय बच्चे स्वयं लेते हैं। और इसलिए बच्चे जब अध्ययन कक्ष में आते हैं तो अपनी पूरी ऊर्जा, पूरे मन से काम करते हैं।

अध्ययन कक्ष में आने वाले बच्चों में लगभग 150 बच्चों ने वर्ष भर में दो सौ से अधिक किताबें पढ़ीं। कुछ ने सौ से अधिक तो कुछ ने सौ से कम भी पढ़ीं। इस तथ्य ने यह साबित किया है कि बच्चे पढ़ना चाहते हैं, पढ़ना उनके लिए दुनिया को समझने का नया अवसर होता है।

पढ़ना, कहानियां सुनना, गीत गाना, चर्चा करना, रचनाएं लिखना आदि कामों में बच्चों को अपनी भाषा विकास के भरपूर अवसर मिलते हैं, जो कि बच्चों के व्यक्तित्व विकास के लिए भी जरूरी है। अध्ययन कक्ष में पढ़ने व लिखने का समृद्ध वातावरण (प्रिन्ट रिच एन्वायरमेंट) पढ़ने को सहज बनाता है जो घर व स्कूलों में नहीं बन रहा है। बच्चे के चारों ओर लिखित सामग्री से समृद्ध वातावरण होता है तो हर बच्चा अपने जैसे अन्य बच्चों को सार्थकता के साथ पढ़ते व लिखते हुए देखता है। जिस प्रकार से सुनने व बोलने के समृद्ध माहौल में बच्चा सुनना, बोलना सीख जाता है वैसे ही पढ़ने-लिखने के समृद्ध माहौल में बच्चे पढ़ना-लिखना भी सीख जाते हैं।

एक बड़े मोहल्ले या बड़े गांव के अध्ययन कक्ष में एक संचालक व कुछ किशोर-किशोरियों के प्रयासों से आस-पास के तीन-चार स्कूलों या स्कूल नहीं जा रहे एक-डेढ़ हजार बच्चों पर सकारात्मक प्रभाव डाले जा सकते हैं। दरअसल इस प्रकार का पुस्तकालय घर की अनौपचारिक शिक्षा व स्कूल की औपचारिक शिक्षा के बीच एक पुल बन सकता है। इस वजह से यह जरूरी लगता है कि पार्टटाइम की अपेक्षा एक फुलटाइम व्यक्ति को पुस्तकालय संचालक के रूप में रखा जाना चाहिए। इस व्यक्ति में वे सभी कौशल, क्षमताएं व समझ हो जो संचालक के लिए जरूरी है। ♦